भारत भूषण

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य

(आपराधिक अपील संख्या 628-629 2013)

26, अप्रैल 2013

[टी.एस. ठाकुर और दीपक मिश्रा, जे.जे.]

धारा 376 भा.दं.सं. 1860- 11 वर्ष की लड़की का बलात्कार - विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति - गवाहों की साक्ष्य व चिकित्सा साक्ष्य के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि - पांच साल की सजा और व्यतिक्रम खण्ड के साथ जुर्माना - निर्णीतः उच्च न्यायालय की दोषसिद्धि न्यायोचित - परंतु क्योंकि अभियुक्त किशोर न्याय अधिनियम, 2000 के अंतर्गत किशोर था, उच्च न्यायालय द्वारा सजा देना सही नहीं था - उच्च न्यायालय को सजा के लिए मामला किशोर न्याय बोर्ड को प्रेषित करना चाहिए था - हालांकि तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कि वर्तमान निर्णय के समय अभियुक्त की आयु 36 वर्ष थी, अभियुक्त के परिवार है और अभियुक्त तीन साल की सजा काट चुका है, तो मामला किशोर न्याय बोर्ड को प्रेषित करना उपयुक्त नहीं होगा - इसलिए अभियुक्त को अभिरक्षा से रिहा किए जाने के निर्देश दिए गए - किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 2(के), 2(एल), 7-ए, 20 और 49 - किशोर

न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 नियम 12 और 98।

किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 - धारा 20 -प्रयोज्यता - का विस्तार -निर्णीतः अधिनियम के प्रवाह में आने की दिनांक को किशोर के विरुद्ध लंबित कार्यवाही के संदर्भ में, न्यायालय अभियुक्त की दोषसिद्धि अभिलिखत कर सकता है, परंतु सजा का आदेश पारित नहीं कर सकता - सजा का आदेश पारित करने के लिए किशोर बोर्ड को प्रेषित किया जाना चाहिए।

अपीलार्थी - अभियुक्त व सहअभियुक्त को लगभग 11 वर्ष की लड़की के साथ बलात्कार करने के आरोप के लिए अभियोजित किया गया। विचारण न्यायालय ने दोनों अभियक्तगण को दोषमुक्त किया। अपील में उच्च नयायाल द्वारा साक्ष्य के विश्लेषण पर सहअभियुक्त को दोषमुक्त किया गया - परंतु अपीलर्थी - अभियुक्त को अपराध अंतर्गत धारा 376 भा.दं.सं. के अपराध का दोषी पाया गया। सजा देते हुए उच्च न्यायालय ने अभियुक्त के इस तर्क को खारिज कर दिया कि वह धारा 20 किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के प्रावधानों के लाभ का अधिकारी था, क्योंकि घटना की दिनांक को उसकी आयु 18 वर्ष से कम थी और उसे पांच वर्ष के कारावास और व्यतिक्रम खण्ड के साथ 50,000/- के जुर्माने की सजा सुनायी। इस तरह दोषसिद्धि आदेश के साथ

सजा के आदेश के विरुद्ध अपीलर्थी - अभियुक्त द्वारा यह अपीलें दायर की गयीं।

दोषसिद्धि आदेश को चुनौती देने वाली अपील को खारिज व सजा के आदेश को चुनौती देने वाली अपील को स्वीकार करते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया गया :-

1. अपराध कारित करने की दिनांक को अपीलार्थी धारा 2(के), 2(एल), 7-ए, 20 और 49 किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 सपठित अधिनियम के अंतर्गत बने नियमों के नियम 12 और 98 के अनुसार स्वीकृत रूप से किशोर था, इसलिए वह उक्त प्रावधान के लाभ का अधिकारी था। [पैरा 10] [1022-सी-ई]

हरि राम बनाम राजस्थान राज्य (2009) 13 एससीसी 211:2009 (7) एससीआर 623; राजू और अन्य बनाम हरियाणा राज्य (2010) 3 एससीसी 235:2010 (2) एससीआर 574; धरमबीर बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य (2010) 5 एससीसी 344:2010 (5) एससीआर 137; मोहन माली और अन्य बनाम वि.म.प्र. राज्य (2010) 6 एससीसी 669; जीतेन्द्र सिंह उर्फ बब्बू सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2010) 13 एससीसी 523:2010 (13) एससीआर 879; दया नंद बनाम हरियाणा राज्य (2011) 2 एससीसी 224:2011 (1) एससीआर 173; शाह नवाज बनाम यूपी राज्य और अन्य (2011) 13 एससीसी 751:2011 (9) एससीआर

859; अमित सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2011) 13 एससीसी 744:2011 (9) एससीआर 890 - की पालना की।

प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य और अन्य (2005) 3 एससीसी 551:2005 (1) एससीआर 1019; जमील बनाम महाराष्ट्र राज्य (2007) 11 एससीसी 420:2007 (1) एससीआर 946; रणजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2008) 9 एससीसी 453:2008 (13) एससीआर 332 - को संदर्भित किया।

2.1 2000 अधिनियम की धारा 20 के अनुसार 2000 अधिनियम के प्रवाह में आने की तिथि से किसी भी न्यायालय में एक किशोर के खिलाफ लंबित कार्यवाही इस तरह जारी रहनी थी जैसे कि 2000 अधिनियम लागू ही नहीं हुआ हो। धारा 20 संबंधित न्यायालय को यह अभिलिखित करने के लिए बाध्य करती है कि किशोर ने कोई अपराध किया है या नहीं। यदि न्यायालय किशोर को दोषी पाता है, तो उपरोक्त प्रावधान के तहत किशोर को बोर्ड के पास भेजना आवश्यक है जो तब अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार एक आदेश पारित करेगा जैसे कि वह अधिनियम के तहत जांच पर संतुष्ट हो गया हो कि किशोर ने अपराध किया था। [पैरा 12] [10230-ई-एफ]

2.2 वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता 1986 अधिनियम के तहत किशोर नहीं था क्योंकि घटना की दिनांक को वह 16 वर्ष की आयु पार कर

चुका था। हालाँकि, मामला 2000 अधिनियम लागू होने की तारीख पर अपील में उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित था और इसलिए, अधिनियम की धारा 20 के तहत निपटाया जाना था, जिसके लिए उच्च न्यायालय को आरोपी के अपराध के बारे में निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता थी, लेकिन उसके खिलाफ सजा का आदेश पारित नहीं करना चाहिए था। हालाँकि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराया, लेकिन उसने कोई गलती नहीं की क्योंकि ऐसा करने की शक्ति धारा 20 के प्रावधानों के तहत उच्च न्यायालय को स्पष्ट रूप से उपलब्ध थी, परंतु सज़ा पारित करने की अनुमति नहीं थी, जिसके लिए उच्च न्यायालय को किशोर को अधिनियम के तहत गठित किशोर बोर्ड को अग्रेषित करना आवश्यक था। इसलिए सजा का आदेश टिकाऊ नहीं है। [पैरा 17] [1026-एच; 1027-ए-सी]

बिजेंदर सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2005) 3 एससीसी 685:2005 (2) एससीआर 1131; धरमबीर बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य (2010) 5 एससीसी 344:2010 (5) एससीआर 137; दया नंद बनाम हरियाणा राज्य (2011) 2 एससीसी 224:2011 (1) एससीआर 173; कालू उर्फ अमित बनाम हरियाणा राज्य (2012) 8 एससीसी 34- की पालना की।

3.1 उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखत दोषसिद्धि गुणावगुण पर न्यायोचित है। अपीलार्थी को इस प्रक्रम पर किशोर न्याय बोर्ड को प्रेषित

करना उचित नहीं है। उच्च न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों, विशेष रूप से पीड़िता, उसके साथी पीडब्लू-2 और उसकी चाची पियर देवी-पीडब्लू-3 के साथ-साथ उसके माता-पिता के बयान की उचित सराहना की है। उच्च न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध चिकित्सा साक्ष्य की भी सही सराहना की है। पीडब्लू-9-डॉक्टर डीसी नेगी और पीडब्लू-13 के बयानों के अनुसार अभियोक्त्री की उम्र 9 से 12 वर्ष के बीच थी, जिन्होंने यह साबित किया कि उसकी जन्मतिथि 13 अप्रैल, 1982 थी। जिस टोपी से अपीलकर्ता ने यौन उत्पीड़न के बाद खून पोंछा था, उस पर मानव रक्त की उपस्थिति भी एक अभियोगी परिस्थिति है जिस पर उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषी पाते हुए सही विचार किया है। [पैरा 18 and 19] [1027-डी-एफ; 1028-ए-बी]

3.2 अपीलार्थी का किशोर न्याय बोर्ड को इतनी देरी से संदर्भ अनावश्यक है। अपीलकर्ता अब लगभग 36 वर्ष का है और तीन बच्चों का पिता है। वह पहले ही उच्च न्यायालय द्वारा सुनाई गई लगभग तीन साल की कैद की सजा काट चुका है। इन परिस्थितियों में, उनके जीवन के इस चरण में किशोर न्याय बोर्ड का संदर्भ हमारी राय में कोई उद्देश्य पूरा नहीं करेगा। एकमात्र विकल्प यह है कि उसे अभिरक्षा से रिहा करने का निर्देश दिया जाए। [पैरा 20] [1028-सी-डी

न्यायिक दृष्टांत संदर्भः

2005 (1) एससीआर 1019	मद संख्या	6
	आधारित पैरा	13
2007 (1) एससीआर 946	मद संख्या	7
2008 (13) एससीआर 332	मद संख्या	7
2009 (7) एससीआर 623	आधारित पैरा	8
2010 (2) एससीआर 574	आधारित पैरा	9
2010 (5) एससीआर 137	आधारित पैरा	9
(2010) 6 एससीसी 669	आधारित पैरा	9
2010 (13) एससीआर 879	आधारित पैरा	9
2011 (1) एससीआर 173	आधारित पैरा	9
2011 (9) एससीआर 859	आधारित पैरा	9
2011 (9) एससीआर 890	आधारित पैरा	9
2005 (2) एससीआर 1131	आधारित पैरा	14
2010 (5) एससीआर 137	आधारित पैरा	15
2011 (1) एससीआर 173	आधारित पैरा	16
(2012) 8 एससीसी 34	आधारित पैरा	16

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकारिताः आपराधिक अपील संख्या 628-629/2013

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, शिमला की आपराधिक अपील संख्या 406/1995 के अंतिम निर्णय एवं आदेश दिनांक 08.04.2010 से

न्यायालय का निर्णय न्यायधीश टी.एस. ठाकुर, जे. द्वारा पारित किया गया।

1. विलम्ब क्षमा किया गया।

2. अनुमति प्रदान की गई।

3. यह अपीलें हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, शिमला द्वारा पारित 8 अप्रैल, 2010 और 30 अप्रैल, 2010 के निर्णयों और आदेशों से उत्पन्न हुई हैं, जिसके तहत 1995 की आपराधिक अपील संख्या 406 को स्वीकार किया गया है, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति का आदेश अपास्त किया गया, अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया और 50,000/- रुपये के जुर्माने के अलावा पांच साल की कठोर कारावास की सजा सुनाई। जुर्माना अदा न करने पर अपीलार्थी को एक वर्ष की अवधि के लिए अतिरिक्त कारावास भुगतने का निर्देश दिया गया है।

4. अपीलकर्ता पर हिमाचल प्रदेश के जिला शिमला के गांव कांडा में लगभग 10 साल की एक अन्य लड़की के साथ खेतों में काम करते समय

मुश्किल से 11 साल की लड़की के साथ बलात्कार का अपराध करने का आरोप लगाया गया था। विचारण के दौरान अभियोजन ने न केवल अभियोक्त्री को परीक्षित किया, जिसने आरोप की पुष्टि की, बल्कि अन्य गवाहों के साथ-साथ पीडब्लू-2 उसकी साथी, जिसका नाम पहचान को सुरक्षित रखने के लिए छुपाया गया है, को भी परीक्षित करवाया, जो सह-अभियुक्त दिनेश कुमार द्वारा किए गए हमले से बच कर भाग गयी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि पीडब्लू-2 द्वारा चिल्लाने पर पीडब्लू-3 पीर देवी, पीडब्लू-2 की मां का ध्यान आकर्षित हुआ, जो लड़कियों को बचाने के लिए मौके पर पहुंची थी, जिस पर ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त भाग गए। मुकदमे में पीडब्लू-5-मिश्रू-अभियोक्त्री के पिता और पीडब्लू-7, 8 और 9 क्रमशः डॉ. अजय नेगी, डॉ. सुरेश बंसल और डॉ. डीसी नेगी भी परीक्षित हुए, जिनमें से सभी ने अपने बयानों में अभियोजन पक्ष का समर्थन किया। हालाँकि, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियोजन पक्ष उपरोक्त उल्लेखित गवाहों के बयान के बावजूद अपीलकर्ता के खिलाफ अपना मामला साबित करने में विफल रहा है और तदनुसार, दोनों आरोपी व्यक्तियों को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया।

5. 1995 की आपराधिक अपील संख्या 406 तब हिमाचल प्रदेश राज्य द्वारा अपीलकर्ता और उसके साथी दिनेश कुमार के संदर्भ में विचारण न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को चुनौती देने के लिए दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ दायर की गई थी। उच्च न्यायालय ने 8 अप्रैल, 2010

को अपने निर्णय और आदेश द्वारा अपील को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया, विचारण न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को पलट दिया और अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत बलात्कार के लिए दोषी ठहराया। दिनेश कुमार के संबंध में, उच्च न्यायालय का विचार था कि उनके पक्ष में पारित दोषसिद्धि का आदेश उचित था। उच्च न्यायालय का विचार था कि अभियोजन की कहानी न केवल अभियोक्त्री के बयान के करण विश्वसनीय व आत्मविश्वास प्रेरित करने वाली थी, बल्कि इस तथ्य के कारण भी कि उसकी कहानी पीडब्लू-2, दूसरी लड़की द्वारा पूरी तरह से पुष्ट की गई थी जो सह-अभियुक्त दिनेश कुमार के चंगुल से बच गईं और इस तथ्य के कारण भी कि पीडब्लू-3 पियार देवी, जो अपनी बेटी द्वारा किए गए शोर को सुनने के बाद पीड़िता को बचाने के लिए घटनास्थल पर पहुंची थीं। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उच्च न्यायालय ने पाया कि डॉ. सुरेश बंसल, जिन्होंने पीड़िता की जांच की थी, की गवाही से पीड़िता के साथ बलात्कार का मामला स्थापित होता है। साक्ष्य के ऐसे पुनर्मूल्यांकन पर अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत दोषसिद्ध किया गया।

6. उच्च न्यायालय ने आगे अपीलकर्ता को दी जाने वाली सजा के प्रश्न का परीक्षण किया और 30 अप्रैल, 2010 के पृथक आदेश से अपीलकर्ता को पांच साल के कठोर कारावास और 50,000/- रुपये के जुर्माने और एक व्यतिक्रम की सजा सुनाई और जैसा कि ऊपर देखा जा

चुका है एक साल की सजा सुनाई। महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसा करते समय उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता की ओर से दिए गए तर्क को सुनकर खारिज किया कि अपराध के समय वह केवल 16 वर्ष और 4 महीने का था, इसलिए, वह धारा 20 किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के प्रावधानों का लाभ पाने का अधिकारी था। प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य और अन्य (2005) 3 एससीसी 551, में इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए उच्च न्यायालय ने माना कि अधिनियम का लाभ याचिकाकर्ता को विधिक रूप से उपलब्ध नहीं था।

7. उच्च न्यायालय ने जमील बनाम महाराष्ट्र राज्य (2007) 11 एससीसी 420 में इस न्यायालय के निर्णयों पर भी भरोसा किया, जहां इस न्यायालय ने माना कि चूंकि उस मामले में अपीलकर्ता ने घटना की तारीख के समय 16 वर्ष की आयु पूरी कर ली थी, किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 लागू नहीं हो सकता था। उच्च न्यायालय द्वारा रणजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2008) 9 एससीसी 453 में इस न्यायालय के फैसले को भी आधार बनाया गया, जहां इस न्यायालय ने जमील मामले (सुप्रा) में फैसले को आधार बनाते हुए इस तर्क को खारिज कर दिया था कि याचिकाकर्ता किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के लाभ का अधिकारी था, क्योंकि अपराध करते समय उसकी उम्र 18 वर्ष से कम थी। निष्कर्ष में,

उच्च न्यायालय ने माना कि 2000 अधिनियम की धारा 20 लागू नहीं थी क्योंकि अपराध के समय यानी 22 जून, 1993 को अभियुक्त की आयु 16 वर्ष से अधिक थी और 01-04-2001 को 18 वर्ष से अधिक थी, जब 2000 अधिनियम लागू हुआ। अपीलकर्ता द्वारा दायर वर्तमान अपील उपरोक्त दर्शित दो आदेशों की सत्यता को चुनौती देती है जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है।

8. हमने पक्षों के विद्वान वकीलों को कुछ विस्तार से सुना है। अपीलकर्ता जिसकी आयु 22 जून, 1993 को अपराध करने की तारीख को 16 वर्ष से अधिक लेकिन 18 वर्ष से कम थी, की पात्रता के संबंध में वैधानिक स्थिति हमारे विचार में इस न्यायालय के निर्णय हरि राम बनाम राजस्थान राज्य (2009) 13 एससीसी 211 में स्थापित हो चुकी है। इस न्यायालय ने उस मामले में कानून के इतिहास का पता लगाया है और इस विषय पर पूरे मामले के कानून की समीक्षा की है। प्रताप सिंह के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए, हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय ने दोहराया कि कानून का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की किशोरता का प्रश्न घटना की तारीख के संदर्भ में निर्धारित किया जाना चाहिए न कि वह तारीख जिस पर मजिस्ट्रेट द्वारा प्रसंज्ञान लिया गया है। ऐसा कहने के बाद, इस न्यायालय ने माना कि प्रताप सिंह के मामले (सुप्रा) में फैसले का प्रभाव दूसरे प्रश्न पर पड़ेगा जो यह है कि क्या 2000 अधिनियम उस मामले में लागू था,

जहां कार्यवाही 1986 अधिनियम के तहत शुरू की गई थी और 2000 अधिनियम लागू होने पर लंबित थी जो किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 में 2006 के अधिनियम 33 द्वारा संशोधन से निष्प्रभावी हो गया था. इस न्यायालय ने कहा कि संशोधनों ने अधिनियम के प्रावधानों को उन किशोरों पर भी लागू कर दिया, जिन्होंने अपराध करने की तिथि पर 18 वर्ष की आयु पूरी नहीं की थी। न्यायालय के लिए बोलते हुए अल्तमस कबीर, जे. (जैसा कि उस समय उनका आधिपत्य था) ने कहा:

> "58. प्रताप सिंह मामले में तय किए गए दो मुख्य प्रश्नों में से एक बिंदु अब अच्छी तरह से स्थापित हो गया है कि कानून का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की किशोरता की गणना घटना की तारीख से की जानी चाहिए, न कि उस तारीख से जिस दिन मजिस्ट्रेट द्वारा प्रसंज्ञान लिया गया था, हालाँकि, निर्णय के दूसरे भाग का प्रभाव, 2006 के अधिनियम 33 द्वारा किशोर न्याय अधिनियम, 2000 में संशोधन के आधार पर निष्प्रभावी कर दिया गया था, जिसके तहत अधिनियम के प्रावधानों को उन किशोरों पर भी लागू किया गया था जिन्होंने अपराध के घटित होने की दिनांक को अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की थी।

59. नियम 12 और 98 के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 2(के), 2(एल), 7-ए, 20 और 49 को संयुक्त रूप से पढ़ने पर कानून अब स्पष्ट हो गया है, जिसमें कोई संदेह नहीं है कि उन सभी व्यक्तियों को किशोन माना जाएगा जो कि 1-4-2001 से पहले भी अपराध करने की तिथि पर 18 वर्ष की आयु से कम थे, भले ही अधिनियम के प्रवाह में आने की तिथि को या उससे पहले 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद किशोरता का दावा किया गया हो और दोषी पाए जाने पर सज़ा काट रहे थे।

xxxxxxxxx

xxxxxxxxx

68. तदनुसार, एक किशोर जिसने अपराध करने की तिथि पर अठारह वर्ष पूरे नहीं किए थे, वह भी किशोर न्याय अधिनियम, 2000 के लाभों का हकदार है, जैसे कि धारा 2 **(के)** के प्रावधान 1986 के अधिनियम के प्रवाह के दौरान हमेशा अस्तित्व में थे।"

9. इन निर्णयों का इस न्यायालय के कई अन्य निर्णयों में पालन किया गया है, जिसमें राजू और अन्य बनाम हरियाणा राज्य (2010) 3 एससीसी 235, धरमबीर बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य (2010)

5 एससीसी 344, मोहन माली और अन्य बनाम वि.म.प्र. राज्य (2010) 6 एससीसी 669, जीतेन्द्र सिंह उर्फ बब्बू सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2010) 13 एससीसी 523, दया नंद बनाम हरियाणा राज्य (2011) 2 एससीसी 224, शाह नवाज बनाम यूपी राज्य और अन्य (2011) 13 एससीसी 751 और अमित सिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2011) 13 एससीसी 744 में इस न्यायालय के निर्णय भी शामिल हैं।

10. यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय का ध्यान हरि राम मामले (सुप्रा) के फैसले की ओर आकर्षित नहीं हुआ था, हालांकि इसे 5 मई, 2009 को सुनाया गया था यानी कि मामले में आक्षेपित फैसले की घोषणा से लगभग एक साल पहले। जैसा भी हो, जिस तारीख को अपराध किया गया था, अपीलकर्ता नियम के साथ पठित धारा 2(के),2(एल),7-ए,20 और 49 सपठित नियम 12 और 98 जो किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के तहत बनाए गए थे, के प्रावधानों के अनुसार स्वीकृत रूप से किशोर था। इसलिए वह उक्त प्रावधान के लाभ का अधिकारी था, जो लाभ स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय द्वारा गलत तरीके से अस्वीकार कर दिया गया है क्योंकि उच्च न्यायालय हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले से अनभिज्ञ रहा।

11. फिर सवाल यह है कि क्या उच्च न्यायालय अपीलकर्ता के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज कर सकता था, जो जैसा कि ऊपर देखा गया है,

अपराध की तारीख पर किशोर था। हमारी राय में, उस प्रश्न का उत्तर 2000 अधिनियम की धारा 20 में निहित है, जो इस प्रकार है:

> "**20. लंबित मामलों के बारे में विशेष उपबंध** - इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, किसी क्षेत्र के न्यायालय में, उस तारीख को जबकि यह अधिनियम उस क्षेत्र में प्रवृत्त होता है, लंबित किशोर विषयक सब कार्यवाहियां उस न्यायालय में इस प्रकार चालू रखी जाएंगी, मानो यह अधिनियम पारित नहीं किया गया है और यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किशोर ने अपराध किया है तो वह उस निष्कर्ष को अभिलिखित करेगा और उस किशोर के बारे में कोई दंडादेश करने के बजाय उस किशोर को बोर्ड को भेज देगा, जो उस किशोर के बारे में आदेश इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार ऐसे करेगा मानो इस अधिनियम के अधीन जांच पर उसका समाधान हो गया है कि किशोर ने वह अपराध किया है:
>
> [परंतु बोर्ड किसी ऐसे उपयुक्त और विशेष कारण से जो आदेश में वर्णित किया जाए, मामले का पुनर्विलोकन कर सकेगा और ऐसे किशोर के हित में उपयुक्त आदेश पारित कर सकेगा ।

स्पष्टीकरण - किसी न्यायालय में विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर से संबंधित सभी लंबित मामलों में जिनके अंतर्गत विचारण, पुनरीक्षण, अपील या कोई अन्य दांडिक कार्यवाहियां भी हैं, ऐसे किशोर की किशोरावस्था का अवधारण धारा 2 के खंड (ठ) के निबन्धनानुसार किया जाएगा भले ही किशोर इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले किशोर न रहा हो और इस अधिनियम के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो उक्त उपबंध सभी प्रयोजनों के लिए और सभी तात्विक समयों पर प्रवर्तन में थे जब ऐसा अभिकथित अपराध किया गया था।"

12. उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि 2000 अधिनियम लागू होने की तिथि पर किसी भी न्यायालय में एक किशोर के खिलाफ लंबित कार्यवाही इस तरह जारी रहनी थी जैसे कि 2000 अधिनियम लागू ही नहीं हुआ हो। इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि धारा 20 (सुप्रा) संबंधित न्यायालय को यह अभिलिखित करने के लिए बाध्य करती है कि किशोर ने कोई अपराध किया है या नहीं। यदि न्यायालय किशोर को दोषी पाता है, तो उपरोक्त प्रावधान के तहत किशोर को बोर्ड के पास भेजना आवश्यक है जो तब अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार एक आदेश पारित करेगा जैसे कि वह अधिनियम के तहत जांच पर संतुष्ट हो गया हो कि किशोर ने अपराध किया था।

13. यहां तक कि प्रताप सिंह के मामले (सुप्रा) में भी, इस न्यायालय ने 2000 अधिनियम की धारा 20 की व्याख्या की थी, और माना था कि धारा 20 ऐसे मामलों में आकर्षित होती है जहां व्यक्ति, यदि पुरुष है, तो 1986 अधिनियम के तहत किशोर नहीं रह गया है क्योंकि उसकी आयु 16 वर्ष से अधिक थी लेकिन अभी तक 18 वर्ष की आयु पार नहीं की गयी है। इस न्यायालय ने घोषणा की कि केवल ऐसे मामलों में ही धारा 20 लागू होती है और न्यायालय को अभियुक्त के अपराध या निर्दोषता के बारे में अपना निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता होती है। इस न्यायालय ने कहा:

> "31. जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, अधिनियम की धारा 20 लंबित मामलों के संबंध में विशेष प्रावधान से संबंधित है और गैर-अस्थिर खंड से शुरू होती है। यह वाक्य "इस अधिनियम में किसी भी बात के होते हुए भी किसी किशोर के संबंध में सभी कार्यवाही किसी भी क्षेत्र में किसी भी न्यायालय में उस तारीख को लंबित है जिस दिन यह अधिनियम लागू हुआ था" का बहुत महत्व है। अधिनियम की धारा 20 में निर्दिष्ट किसी भी अदालत में लंबित किशोर के संबंध में कार्यवाही, 2000 अधिनियम के लागू होने से पहले शुरू की गई कार्यवाहियों से संबंधित है और जो 2000 अधिनियम के लागू होने पर लंबित हैं। "कोई भी न्यायालय" शब्द में सामान्य आपराधिक न्यायालय भी

शामिल होंगे। यदि व्यक्ति 1986 अधिनियम के तहत "किशोर" था तो आपराधिक न्यायालयों में कार्यवाही लंबित नहीं होगी। वे आपराधिक न्यायालयों में तभी लंबित होंगे जब लड़का 16 वर्ष या लड़की 18 वर्ष से अधिक हो गए हों। इससे पता चलता है कि धारा 20 उन मामलों को संदर्भित करती है जहां कोई व्यक्ति 1986 अधिनियम के तहत किशोर नहीं रह गया है, लेकिन अभी तक 18 वर्ष की आयु पार नहीं कर पाया है, तो लंबित मामला उस न्यायालय में जारी रहेगा जैसे कि 2000 अधिनियम पारित नहीं हुआ है और यदि न्यायालय ऐसा निष्कर्ष अभिलिखित करता है कि किशोर ने कोई अपराध किया है, तो किशोर के संबंध में कोई सजा देने के बजाय, किशोर को बोर्ड को भेज देगा जो उस किशोर के संबंध में आदेश पारित करेगा।" (जोर दिया गया)

14. बिजेंदर सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2005) 3 एससीसी 685 मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी संदर्भ लिया जा सकता है, जहां इस न्यायालय ने अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए कानूनी स्थिति को दोहराया और कहा:

"8. 1986 अधिनियम और 2000 अधिनियम के बीच बुनियादी अंतरों में से एक पुरुषों और महिलाओं की उम्र से संबंधित है। 1986 अधिनियम के तहत, किशोर का अर्थ है एक पुरुष किशोर जिसने 16 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है और एक महिला किशोर जिसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं की है। 2000 के अधिनियम में, उम्र के आधार पर पुरुष और महिला किशोरों के बीच अंतर को बनाए नहीं रखा गया है। पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए आयु सीमा 18 वर्ष है।

9. 1986 अधिनियम के अनुसार 16 वर्ष से अधिक उम्र का व्यक्ति किशोर नहीं था। इस मामले को ध्यान में रखते हुए इस प्रश्न का उत्तर दिया जाना चाहिए कि क्या 16 वर्ष से अधिक उम्र का कोई व्यक्ति 2000 अधिनियम के दायरे में "किशोर" बन जाता है, इसका उत्तर उद्देश्य और आशय को ध्यान में रखते हुए दिया जाना चाहिए।

10. 1986 अधिनियम के अनुसार, जो व्यक्ति किशोर नहीं था उस पर किसी भी अदालत में मुकदमा चलाया जा सकता था। 2000 अधिनियम की धारा 20 ऐसी स्थिति का ख्याल रखती है जिसमें कहा गया है कि इसके बावजूद उस

अदालत में विचारण जारी रहेगा जैसे कि वह अधिनियम पारित नहीं हुआ है और इस घटना में, वह अपराध करने का दोषी पाया जाता है, इस आशय का निष्कर्ष दोषसिद्धि के फैसले में दर्ज किया जाएगा, यदि कोई हो, लेकिन किशोर के संबंध में कोई सजा पारित करने के बजाय, उसे किशोर न्याय बोर्ड (संक्षेप में 'बोर्ड') को भेज दिया जाएगा जो अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ऐसे आदेश पारित करेंगे जैसे कि वह जांच पर वह संतुष्ट हो गया हो कि किशोर ने अपराध किया है। इस प्रकार, उक्त प्रावधान में एक कानूनी कल्पना सृजित गई है...

xx xx xx

12. इस प्रकार, कानूनी कल्पना के कारण, एक व्यक्ति, हालांकि किशोर नहीं है, को सजा देने के उद्देश्य से बोर्ड द्वारा किशोर माना जाना चाहिए जो ऐसी स्थिति को भी ध्यान में रखता है कि वह व्यक्ति हालांकि 1986 अधिनियम के तहत हालांकि किशोर नहीं है, लेकिन फिर भी उक्त सीमित उद्देश्य के लिए 2000 अधिनियम के तहत किशोर ही माना जाएगा।" (जोर दिया गया)

15. 2000 अधिनियम की धारा 20 की व्याख्या धरमबीर बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2010) 5 एससीसी 344 में भी हुई, जहां भी इस न्यायालय ने माना कि इसके साथ संलग्न स्पष्टीकरण न्यायालय को दोषसिद्धि के बाद भी अभियुक्त की किशोरता निर्धारित करने में सक्षम बनाता है और अदालत दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए उस पर लगाई गई सजा को रद्द कर सकती है और अधिनियम के तहत उचित आदेश पारित करने के लिए मामले को बोर्ड को भेज सकती है। इस न्यायालय ने कहा:

> "11. धारा 20 के स्पष्टीकरण की भाषा से यह स्पष्ट है कि सभी लंबित मामलों में, जिसमें न केवल विचारण बल्कि पुनरीक्षण या अपील आदि के माध्यम से अनुवर्ती कार्यवाही भी शामिल होगी, एक किशोर की किशोरता का निर्धारण धारा 2 के खंड (एल) के अनुसार होना चाहिए, भले ही किशोर 1 अप्रैल, 2001 को या उससे पहले किशोर न रह जाए, जब 2000 का अधिनियम लागू हुआ और अधिनियम के प्रावधान ऐसे लागू होंगे जैसे कि वह अधिनियम सभी प्रयोजनों के लिए और सभी भौतिक समय के लिए प्रवाह में रहा हो, जब तथाकथित अपराध किया गया था। 2000 के अधिनियम की धारा 2 के खंड (एल) में प्रावधान है कि "विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर" का अर्थ एक "किशोर" है जिस पर अपराध करने का आरोप है और उसने

ऐसा अपराध करने की तिथि तक अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है। धारा 20 न्यायालय को नियमित न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए जाने के बाद भी किसी व्यक्ति की किशोरता पर विचार करने और निर्धारित करने में सक्षम बनाती है और अदालत को दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए, लगाई गई सजा को रद्द करने और मामले को संबंधित किशोर न्याय बोर्ड को 2000 के अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार सजा पारित करने के लिए भेजने का अधिकार भी देती है।

16. उपरोक्त स्थिति दया नंद बनाम हरियाणा राज्य (2011) 2 एससीसी 224 और कालू उर्फ अमित बनाम हरियाणा राज्य (2012) 8 एससीसी 34 में दोहराई गई थी।

17. वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता 1986 अधिनियम के तहत किशोर नहीं था क्योंकि वह 16 वर्ष की आयु पार कर चुका था। हालाँकि, यह मामला 2000 अधिनियम लागू होने की तारीख पर अपील में उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित था और इसलिए, अधिनियम की धारा 20 के तहत निपटाया जाना था, जिसके लिए उच्च न्यायालय को आरोपी के अपराध के बारे में निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता थी, लेकिन उसके खिलाफ सजा का आदेश पारित नहीं करना चाहिए था। हालाँकि उच्च

न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराया, लेकिन उसने कोई गलती नहीं की क्योंकि ऐसा करने की शक्ति धारा 20 के प्रावधानों के तहत उच्च न्यायालय को स्पष्ट रूप से उपलब्ध थी। जिस चीज़ की अनुमति नहीं थी वह सज़ा पारित करना था जिसके लिए उच्च न्यायालय को किशोर को अधिनियम के तहत गठित किशोर बोर्ड को अग्रेषित करना आवश्यक था। इसलिए सजा का आदेश टिकाऊ नहीं है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

18. अगला सवाल यह है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज की गई सजा गुणावगुण के आधार पर उचित थी और यदि ऐसा था, तो क्या हमें इस स्तर पर अपीलकर्ता को किशोर न्याय बोर्ड के पास भेजना चाहिए। हमारा उत्तर पहले भाग के लिए सकारात्मक और दूसरे भाग के लिए नकारात्मक है। हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों, विशेष रूप से पीड़िता, उसके साथी पीडब्लू-2 और उसकी चाची पियर देवी-पीडब्लू-3 के साथ-साथ उसके माता-पिता के बयान की उचित सराहना की है। उच्च न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध चिकित्सा साक्ष्य, विशेष रूप से बयान और पीडब्लू-8-डॉक्टर की रिपोर्ट की भी सही सराहना की है। सुरेश बंसल, जिनकी रिपोर्ट का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

> "...जांच करने पर मैंने पाया कि बच्ची का मासिक धर्म शुरू नहीं हुआ था। जांघें दर्दनाक तरीके से अलग हो गई थीं। हिंसा का कोई निशान मौजूद नहीं था। लेबिया मेजोरा और

जांघों पर थक्का जमा खून मौजूद था। द्वितीयक यौन लक्षणों का विकास था। स्तनों का विकास उम्र के अनुसार था। जघन और बगल में बाल मौजूद थे लेकिन कम थे। हाइमन ताजा टूटा हुआ था। पिछला फोरचेट फट गया था। बच्चे ने एक छोटी उंगली के दर्द को स्वीकार किया। योनि अति प्रजित थी। एमएलसी प्रदर्श पीडब्लू-8/सी में उल्लेखित चोट अभियोक्त्री पर योन समागम से आयी थी..."

19. पीडब्लू-9-डॉक्टर डीसी नेगी और पीडब्लू-13 के बयानों के अनुसार अभियोक्त्री की उम्र 9 से 12 वर्ष के बीच थी, जिन्होंने यह साबित किया कि उसकी जन्मतिथि 13 अप्रैल, 1982 थी। जिस टोपी से अपीलकर्ता ने यौन उत्पीड़न के बाद खून पोंछा था, उस पर मानव रक्त की उपस्थिति भी एक अभियोगी परिस्थिति है जिस पर उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषी पाते हुए सही विचार किया है। इसलिए, हमें उच्च न्यायालय द्वारा गुणावगुण के आधार पर दर्ज किए गए दोषसिद्धि के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता।

20. किशोर न्याय बोर्ड के संदर्भ के प्रश्न पर आते हुए, हमारा विचार है कि इतनी देरी के पश्चात ऐसा संदर्भ अनावश्यक है। अपीलकर्ता अब लगभग 36 वर्ष का है और तीन बच्चों का पिता है। वह पहले ही उच्च न्यायालय द्वारा सुनाई गई लगभग तीन साल की कैद की सजा काट चुका

है। इन परिस्थितियों में, उनके जीवन के इस चरण में किशोर न्याय बोर्ड का संदर्भ, हमारी राय में, कोई उद्देश्य पूरा नहीं करेगा। एकमात्र विकल्प यह है कि उसे अभिरक्षा से रिहा करने का निर्देश दिया जाए।

21. परिणामस्वरूप, हम 8 अप्रैल, 2010 के उच्च न्यायालय के विरुद्ध 2012 की एसएलपी (आपराधिक) संख्या 5059 से उत्पन्न आपराधिक अपील को खारिज करते हैं और भा.दं.सं. की धारा 376 के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ता की सजा को बरकरार रखते हैं। हालाँकि, 2012 की एसएलपी (आपराधिक) संख्या 5060 से उत्पन्न आपराधिक अपील को स्वीकार करते हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित 30 अप्रैल, 2010 के आदेश को इस निर्देश के साथ अपास्त करते हैं कि अपीलकर्ता को अभिरक्षा से रिहा किया जाएगा जब तक कि उसकी अन्य किसी मामले आवश्यकता न हो।

के.के.टी. अपीलें निस्तारित।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्रीमती अनुराधा दाधीच (आर.जे.एस.) अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश एवं न्यायिक मिजस्ट्रेट, सोजत, जिला पाली द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।